जैन धर्म तथा दर्शन के संदर्भ में उत्तरपुराण की राम कथा

श्रीमती वीणा कुमारी

भारत में वाल्मीकीय रामायण को जो लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि मिली है वह सम्भवतः किसी अन्य ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुई। यह महान् ग्रन्थ अपने रचना-काल से लेकर आज तक देश के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता रहा है। आदिकवि वाल्मीकि के पूर्व की रामकथा-विषयक गाथाओं तथा आख्यान-काव्य की लोकप्रियता तथा व्यापकता को निर्धारित करना असम्भव है। बौद्ध त्रिपिटक में एक-दो रामकथा सम्बन्धी गाथाएं मिलती हैं और महाभारत के द्रोणपर्व तथा शान्तिपर्व में जो संक्षिप्त रामकथा पाई जाती है, वह प्राचीन गाथाओं पर ही समाश्रित है।[1] इस प्रकार सामग्री की अल्पता का ध्यान रखकर यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि जिस दिन वाल्मीकि ने इस प्राचीन गाथा साहित्य को एक ही कथासूत्र में ग्रथित कर आदि रामायण की रचना की थी, उसी दिन से रामकथा की दिग्विजय प्रारम्भ हुई। प्रचलित वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में इसका प्रमाण मिलता है कि काव्योपजीवी कुशीलव समस्त देश में जाकर चारों ओर आदिकाव्य का प्रचार करते थे। वाल्मीकि ने अपने शिष्यों को रामायण सिखलाकर उसे राजाओं, ऋषियों तथा जनसाधारण को सुनाने का आदेश दिया था।

वाल्मीकि ने रामायण में श्रीराम के गौरवशाली उदात्त चरित्र का ऐसा चित्रण किया है कि वह सबके लिए आकर्षक बन गया। फलतः रामकथा भारतीय साहित्य की सबसे अधिक लोकप्रिय कथा रही है।[2] समाजशास्त्रीय दृष्टि से रामविषयक कथाएं शौर्यपूर्ण गाथा का वह प्रारंभिक रूप है, जिसके कारण परवर्ती महाकाव्यों को आधार मिला। चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा जैन अथवा बौद्ध—तीनों ही परम्पराओं में रामकथा का स्वतन्त्र रूप मिलता है। जो मूलतः तो एक है, किन्तु स्वरूपतः भिन्न है। राम धार्मिक दृष्टि से जितने लोकप्रिय हैं, उतने ही साहित्यिक दृष्टि से भी।[3] इन्हें काव्य की प्रेरणाशक्ति माना गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा था—

राम! तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है;
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।[4]

आदिरामायण के बाद यह कथा महाभारत में उपलब्ध है। महाभारत में रामकथा का चार स्थलों पर वर्णन उपलब्ध होता है।[5] तदनन्तर यह कथा ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण आदि ग्रन्थों में अल्पान्तर के साथ उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त यह कथा विभिन्न विद्वानों की लेखनी से निकलकर आंशिक या पूर्ण रूप से समाज के सामने आई। इनकी अग्रलिखित कृतियां उल्लेखनीय हैं—कालिदास-कृत रघुवंश, भवभूति-कृत उत्तररामचरित, तुलसी-कृत रामचरितमानस, केशव-कृत रामचन्द्रिका एवं मैथिलीशरण गुप्त-कृत साकेत आदि।[6]

वाल्मीकीय रामायण के पश्चात् तो रामायणों की एक परम्परा ही चल पड़ी। अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, काकभुशुण्डि रामायण आदि। रामायण की कथा ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त की है कि देश की सीमाओं को लांघकर यह अनेक देशों में पहुंची और वहां के साहित्यकारों ने काल और देश की परिस्थिति के अनुरूप कथा-कलेवर देकर इसे विविध रूपों में चित्रित किया। इन्हीं के आधार पर खेतानी रामायण, हिन्देशिया की प्राचीनतम रचना 'रामायण काकविन', जावा का आधुनिक 'सेरतराम' तथा हिन्दचीन, श्याम, ब्रह्मदेश एवं तिब्बती तथा सिंहल आदि देशों में भी रामकथाएं लिखी गई हैं।

---

१. डॉ० कामिल बुल्के : रामकथा, पृ० ७२१
२. तुलनीय, एम० विण्टरनिट्ज : ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, कलकत्ता १९२७, भाग-१, पृ० ४७६
३. डा० रामाश्रय शर्मा : ए सोशियो पोलिटिकल स्टडी आफ दि रामायण, दिल्ली १९७१, पृ० १
४. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, आमुख, साहित्य सदन, चिरगाँव (झांसी), २०१४
५. डॉ० कामिल बुल्के : रामकथा, पृ० ४३
६. राजेन्द्रप्रसाद दीक्षित : उत्तरप्रदेश पत्रिका, लखनऊ १९७७, पृ० ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत में बौद्ध और जैन दोनों ही सम्प्रदाय पूर्वप्रचलित रूढ़ मान्यताओं के प्रति क्रान्तिरूप में उद्‌भूत हुए। अपने दार्शनिक सिद्धांत तथा धार्मिक मान्यताओं के महत्त्व के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इन दोनों ही सम्प्रदायों के विकास के युग में भी रामकथा सम्भवतः जन-सामान्य में अति प्रचलित एवं लोकप्रिय बन चुकी थी। यही कारण है कि इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर रामकथा को उन्होंने भी अपना लिया और अपने सिद्धान्तों के अनुरूप उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। बौद्ध सम्प्रदाय में 'दशरथजातक' की रचना इसी दृष्टि से हुई। दशरथजातक से ज्ञात होता है कि पूर्वजन्म में राजा शुद्धोधन (राजा दशरथ), रानी महामाया (राम की माता), राहुल (माता सीता), बुद्धदेव (रामचन्द्र), उनके प्रधान शिष्य आनन्द (भरत) एवं सारिपुत्र (लक्ष्मण) थे।[1]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बौद्धों ने कई शताब्दियों पहले राम को बोधिसत्त्व मानकर रामकथा को अपने जातक-साहित्य में स्थान दिया था। आगे चलकर बौद्धों में रामकथा की लोकप्रियता घटने लगी। अर्वाचीन बौद्ध साहित्य में रामकथा का उल्लेख नहीं मिलता।[2]

बौद्धों की अपेक्षा जैनानुयायियों ने बाद में रामकथा को अपनाया, लेकिन जैन साहित्य में इसकी लोकप्रियता शताब्दियों तक बनी रही, जिसके फलस्वरूप जैन कथा-ग्रन्थों में एक विस्तृत रामकथा-साहित्य पाया जाता है। इसमें राम, लक्ष्मण और रावण केवल जैन धर्मावलम्बी ही नहीं माने जाते प्रत्युत् उन्हें जैनियों के त्रिषष्टिशलाकापुरुषों में भी स्थान दिया गया है। इस प्रकार रामकथा भारतीय संस्कृति में इतने व्यापक रूप से फैल गई कि राम को उसके तीन प्रचलित धर्मों में एक निश्चित स्थान प्राप्त हुआ—ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार के रूप में, बौद्ध धर्म में बोधिसत्त्व के रूप में तथा जैनधर्म में आठवें बलदेव के रूप में।

आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण की रामकथा के कलेवर में जैनधर्म के पौराणिक विश्वासों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना करने की सफल चेष्टा की है। अनेक ऐसे अवान्तर प्रसंगों के अवसर पर रामकथा को जैनानुमोदित रूप देने की पूर्ण चेष्टा की गई है। इस दृष्टि से रामकथा का धार्मिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि रामकथा से सम्बद्ध तीनों प्रमुख पात्र राम, रावण और लक्ष्मण केवल जैन धर्मावलम्बी ही नहीं हैं अपितु त्रिषष्टिशलाकापुरुषों में भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। त्रिषष्टि महापुरुषों का वर्णन सर्वप्रथम महापुराण में मिलता है, जिसमें कुल ७६ पर्व हैं। इसके दो भाग हैं आदिपुराण और उत्तरपुराण। १ से ४६ पर्वों तक की रचना जिनसेनाचार्य ने की थी तथा यह भाग आदिपुराण के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जबकि शेष पर्वों की रचना जिनसेन के शिष्य गुणभद्राचार्य द्वारा की गई और यह उत्तरपुराण के नाम से प्रचलित हुआ। और ये दोनों भाग 'महापुराण' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जैन देवशास्त्र

जैन धर्म के अनुसार त्रिषष्टिशलाकापुरुष इस प्रकार हैं—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव। प्रत्येक कल्प के त्रिषष्टिमहापुरुषों में से ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव होते हैं, ये तीनों सदैव समकालीन होते हैं।[3] इनकी जीवनियां जैन धर्म में पुराणों के रूप में दी गई हैं। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव माने जाते हैं।[4] जैन धर्म में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता, भर्ता और संहर्ता नहीं माना गया है। इन्होंने ईश्वर को सर्वोच्च नहीं माना है। 'सिद्धि' और 'मुक्ति' को ही सर्वोच्च स्थान दिया है। यही कारण है कि अवतारवाद का जैन धर्म में कोई स्थान नहीं है। जैन राम एक आदर्श माने गए हैं। जैन परम्परा में सभी त्रिषष्टिमहापुरुष लक्ष्मी से युक्त अपार सम्पदा के स्वामी होते हैं। बलदेव चार रत्नों के स्वामी होते हैं। ये रत्न ही इनकी शक्तियां हैं। पृथक-पृथक् यक्ष इनकी रक्षा करते हैं, इन्हीं शक्तियों के बल पर ही वे दुष्टों का संहार किया करते हैं।

राम तथा लक्ष्मण क्रमशः आठवें बलभद्र एवं आठवें नारायण के रूप में

जैन धर्मानुसार राम को आठवां बलभद्र और लक्ष्मण को आठवाँ नारायण[5] मानकर ही रामकथा का जैन रूपांतर किया गया है। राम और लक्ष्मण के केवल एक ही नहीं अपितु पूर्वभवों का भी वर्णन किया गया है। उत्तरपुराण के अनुसार राम का जीव पहले मलयदेश के मन्त्री के पुत्र चन्द्रचूल के मित्र विजय नाम से प्रसिद्ध था। फिर तीसरे स्वर्ग में दिव्य भोगों से लालित कनकचूल नामक प्रसिद्ध देव उत्पन्न हुआ और फिर सूर्यवंश में अपरिमित बल को धारण करने वाला रामचन्द्र हुआ।[6]

---

१. राजेन्द्रप्रसाद दीक्षित : उत्तरप्रदेश पत्रिका, पृ० ११
२. डॉ० कामिल बुल्के : रामकथा, पृ० ६५
३. वही. पृ० ६५
४. एम० विण्टरनित्ज : हि०इं०लिट्०, भाग १, पृ० ४६७
५. 'बलानामष्टमं रामं लक्ष्मणं चार्धचक्रिणाम्।' उत्तरपुराण, ६८/४६२
६. वही, ६८/७३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार लक्ष्मण का जीव पहले मलयदेश में चन्द्रचूल नामक राजपुत्र था, जो अत्यन्त दुराचारी था। जीवन के पिछले भाग में तपश्चरण कर वह स्वर्ग में सनतकुमार नाम से उत्पन्न हुआ और फिर वहां से यहां आकर अर्धचक्री लक्ष्मण बना।

जैन धर्मानुसार वासुदेव और बलदेव दोनों की उत्पत्ति शुभ स्वप्नों के फलस्वरूप होती है। राम और लक्ष्मण की उत्पत्ति भी शुभ स्वप्नों के परिणामस्वरूप हुई थी।[1] गुणभद्र ने जैन धर्म के अनुकूल रामकथा को ढालने का प्रयास किया है। जैनधर्मानुसार नारायण और बलभद्र दोनों भाई होते हैं तथा एक ही राजा की दो भिन्न-भिन्न रानियों से उत्पन्न पुत्र होते हैं। बलदेव हमेशा बड़ा भाई होता है और वासुदेव हमेशा छोटा भाई बलदेव राजा की ज्येष्ठ महिषी से उत्पन्न पुत्र होता है। वाराणसी के राजा दशरथ के भी चार पुत्र होते हैं। ज्येष्ठ पुत्र राम रानी सुबाला के गर्भ से उत्पन्न होता है[2] तथा लक्ष्मण कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न होता है।[3] भरत व शत्रुघ्न की माता का नामोल्लेख नहीं किया गया है।

जैन मान्यतानुसार त्रिषष्टिमहापुरुषों की आयु कई हजार वर्ष होती है तथा वे कई धनुष ऊंचे होते हैं। राम की आयु तेरह हजार वर्ष[4] तथा लक्ष्मण की आयु १२ हजार वर्ष[5] थी तथा दोनों भाई पन्द्रह धनुष ऊंचे थे।[6]

बलदेव और वासुदेव दोनों ही भाई अपरिमित शक्ति से युक्त होते थे।[7] दोनों में से बड़ा भाई बलदेव हमेशा श्वेत वर्ण होता था तथा नारायण सर्वदा नीलवर्ण। राम का शरीर हंसवत् श्वेत तथा लक्ष्मण का नीलकमल के समान नीलकांति वाला था।[8]

बलदेव अर्धचक्रवर्ती होते हैं तथा भारतवर्ष के तीन खण्डों के स्वामी होते हैं। वे सौम्य प्रकृति के होते हैं जबकि वासुदेव उग्र प्रकृति के होते हैं। इसीलिए बलदेव शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं जबकि वासुदेव को नरक में बहुत से दुःखों को भोगने के बाद ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जैन धर्मानुसार नारायण सर्वदा अपने बड़े भाई बलदेव के साथ मिलकर प्रतिवासुदेव से युद्ध करते थे और अन्त में सदैव उसका वध करते थे। प्रतिनारायण या प्रतिवासुदेव जिस चक्र द्वारा वासुदेव पर प्रहार करना चाहता था, वही चक्र नारायण के हाथ में स्थिर हो जाता था और उसे ही वापिस भेजकर वह प्रतिवासुदेव का वध करता था।

आठवें प्रतिवासुदेव रावण ने भी लक्ष्मण व राम दोनों भाइयों से अत्यधिक कुपित होकर अपने विश्वासपात्र चक्ररत्न के लिए आदेश दिया था। वही चक्ररत्न मूर्तिधारी पराक्रम के समान प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण के दाहिने हाथ पर स्थिर हो गया था। तदनन्तर लक्ष्मण ने उसी चक्ररत्न से तीन खण्ड के स्वामी रावण का सिर काटकर अपने आधीन कर लिया था।[9]

प्रतिनारायण का वध करने के उपरान्त नारायण बलदेव के साथ-साथ दिग्विजय करके भारत के तीन खण्डों पर अधिकार प्राप्त करते थे, और इस प्रकार अर्धचक्रवर्ती बन जाते थे। रावण का वध करने के बाद लक्ष्मण ने भी सोलह हजार पट्टबन्ध राजाओं को, एक सौ दस नगरियों के स्वामी विद्याधरों को और तीन खण्ड के स्वामी देवों को आज्ञाकारी बनाया था। उसकी यह दिग्विजय ४२ वर्ष में पूर्ण हुई थी।[10]

जैन परम्परानुसार नारायण अपने पुण्य के क्षीण हो जाने पर चतुर्थ नरक को प्राप्त होता था। लक्ष्मण भी असातावेदनीय कर्म के उदय से प्रेरित महारोग से अभिभूत हो गया और उसी असाध्य रोग के कारण चक्ररत्न का स्वामी लक्ष्मण पंकप्रभा नामक पृथ्वी अर्थात् चतुर्थ नरक में गया था।[11]

रावण आठवें प्रतिनारायण के रूप में

जैन परम्परानुसार रावण आठवां प्रतिनारायण था। गुणभद्र ने आठवें प्रतिनारायण रावण के भी पूर्व तीन भवों का वर्णन किया है।

---

१. उत्तरपुराण, ६७/१४८-५१
२. 'सुतः सुबालासंज्ञायां शुभस्वप्नपुरस्सरम्।' उ०पु०, ६७/१४८
३. उ०पु०, ६७/१५०
४. 'त्रयोदशसहस्राब्दो रामनामानताखिलः।' उ०पु०, ६७/१५०
५. उ०पु०, ६७/१५२
६. 'तौ पञ्चदशचापोच्चौ।' उ०पु०, ६७/१५३
७. उ०पु०, ६७/१५४
८. वही,
९. 'चक्रेण विक्रमेणेव मूर्तीभूतेन चक्रिणा।
तेन तेन शिरोऽग्राहि त्रिखण्डं वा खगेशितुः।' उ०पु०, ६८/६२९
१०. 'द्वाचत्वारिंशदब्दांते परिनिष्ठतदिग्जयः...' उ०पु०, ६८/६५९
११. 'बभूव क्षीणपुण्यस्य ततः कतिपयैर्दिनैः......दिने तेनागमच्चक्री पृथ्वीं पंकप्रभाभिधाम्।' उ०पु०, ६८/७०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिनारायण रावण का जीव पहले 'सारसमुच्चय' नामक देश में नरदेव नामक राजा था। फिर सौधर्म स्वर्ग में सुख का भण्डार स्वरूप देव हुआ और तदनन्तर वहां से च्युत होकर इसी भरत क्षेत्र के राजा विनमि विद्याधर के वंश में, समस्त विद्याधरों के देदीप्यमान मस्तकों की माला पर आक्रमण करने वाला, स्त्री-लम्पट, अपने वंश को नष्ट करने के लिए केतु के समान तथा दुराचारियों में अग्रसर 'रावण' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[१]

प्रतिनारायण सदा नारायण का विरोधी होता था। वह हमेशा उनके विरुद्ध युद्ध करता था। अंत में अपने ही चक्ररत्न द्वारा नारायण के हाथ से मृत्यु को प्राप्त करता था। जैन परम्परानुसार वह सातवें नरक में जाता था। रामकथा का प्रतिनारायण रावण भी लक्ष्मण द्वारा मृत्यु को प्राप्त करने के उपरान्त नरक-गति को प्राप्त हुआ था।[२] इस प्रकार आचार्य गुणभद्र का यह कथन कि पापी मनुष्यों की यही गति होती है,[३] सत्य ही प्रतीत होता है।

जैन धर्म तथा आचार

उत्तरपुराण के रामकथा-सम्बन्धी अंश के अध्ययन से जैन धर्म तथा आचार-विषयक बहुत-सी बातों का ज्ञान होता है। रामकथा से सम्बन्धित सभी प्रमुख पात्र जैन आचरण करते हैं तथा निर्वाण आदि को प्राप्त करते हैं।

श्रावकव्रत ग्रहण—उत्तरपुराण के अनुसार राम एक बार शिवराज गुप्त जिनराज से धर्म-विषयक प्रश्न पूछते हैं। शिवराज गुप्त जिनराज विविध प्रकार के धर्म-सम्बन्धी पदार्थों का विवेचन करते हैं। इस प्रकार धर्म के विशेष स्वरूप को सुनने के बाद राम श्रावकव्रत ग्रहण करते हैं।।[४] जैन परम्परानुसार भगवान् जिनेन्द्र की पूजा की जाती है। उत्तरपुराण में भी राम के साथ-साथ जितने भी अन्य लोग श्रावक व्रत ग्रहण करते हैं, वे सभी भगवान् जिनेद्र के चरणयुगल को अच्छी तरह से नमस्कार करते हैं। उसके बाद वे लोग नगरी में प्रविष्ट होते हैं।[५]

दीक्षा-ग्रहण—नारायण की मृत्यु के बाद बलभद्र शोकाकुल होकर जैनधर्म में दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। लक्ष्मण की मृत्यु के बाद बलभद्र राम ने भी लक्ष्मण के पुत्र को राजा बनाया तथा अपने पुत्र को युवराज बनाकर स्वयं संसार, शरीर तथा भोगों से विरक्त हो गए तथा संयम धारण किया।[६]

श्रुत केवली बनना—लक्ष्मण के शोक से विरक्त होने के बाद राम अयोध्या नगरी के सिद्धार्थ नामक वन में पहुंचते हैं जो कि भगवान वृषभदेव का दीक्षा-कल्याण का स्थान था। वहीं पर जाकर राम संयम धारण करते हैं तथा एक महाप्रतापी केवली शिवगुप्त के पास जाकर संसार और मोक्ष के कारण तथा फल को भली प्रकार समझते हैं।

आचार्य गुणभद्र ने कथा को जैनधर्मानुरूप ढालने के लिए उत्तरपुराण में राम के लिए 'राम मुनि' शब्द का प्रयोग किया है। बाद में वे विधिपूर्वक मोक्षमार्ग का अनुसरण कर श्रुतकेवली बन जाते हैं।[७]

केवल-ज्ञान उत्पन्न होना—उत्तरपुराण में वर्णित रामकथा के अनुसार, राम छद्मावस्था में—अर्थात् श्रुतकेवली की दशा में—३९५ वर्ष व्यतीत करते हैं। ३९५ वर्ष व्यतीत हो जाने पर शुक्ल ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का क्षय करने वाले मुनिराज राम को सूर्य बिम्ब के समान केवल-ज्ञान की उत्पत्ति होती है।[८] इस प्रकार राम जैन परम्परानुसार कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं।

सिद्ध क्षेत्र प्राप्त करना—कैवल्यज्ञान की अवस्था में ६०० वर्ष व्यतीत करने के बाद फाल्गुन मास की शुक्ल चतुर्दशी को प्रातःकाल मुनिराज राम सम्मेदाचल के शिखर पर तीसरा शुक्लध्यान धारण करते हैं। तथा तीनों योगों का निरोध करते हैं। उसके बाद समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाती नामक चौथे शुक्लध्यान के आश्रय से समस्त अघातिया कर्मों का क्षय करते हैं। इस प्रकार औदरिक, तैजस और कार्मण इन

---

१. उ०पु०, ६८/७२८
२. 'सोऽपि प्रागेव बद्धायुर्दुराचारादधोगतिम्।
प्रापदापत्करीं घोरां पापिनां का परा गतिः।' उ०पु०, ६८/६३०
३. उ०पु०, ६८/६३०
४. 'सर्वे रामादयोऽभूवन् गृहीतोपासकव्रताः।' उ०पु०, ६८/६८६
५. उ०पु०, ६८/७१३
६. 'अशीतिशतपुत्रैश्च सह संयममाप्तवान्।' उ० पु०, ६८/७११
७. उ० पु०, ६८/७१४
८. 'रामस्य केवलज्ञानमुदपाद्यर्कबिम्बवत्। उ० पु०, ६८/७१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन शरीरों का नाश हो जाने के बाद उन्नत पद को प्राप्त करते हैं।[1]

रामायण के अन्य पात्रों के धार्मिक आचरण

अणुमान (हनुमान) की उन्नत पद-प्राप्ति—राम के साथ ही साथ हनुमान भी संयम धारण करते हैं। उन्हें भी राम के समान ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। उसके बाद वे भी राम के साथ औदरिक, तैजस और कार्मण इन तीनों प्रकार के शरीरों का नाश कर उन्नत पद प्राप्त करते हैं।[2]

सुग्रीव का संयमधारण—राम-हनुमान आदि के साथ ही सुग्रीव भी संयम धारण करते हैं।[3] इस प्रकार उत्तरपुराण के अनुसार ये सभी पात्र जैन धर्मावलम्बी माने गये हैं।

विभीषण की अनुदिश प्राप्ति—आचार्य गुणभद्र-कृत उत्तरपुराण के अनुसार विभीषण भी सर्वप्रथम जैन धर्मानुरूप राम, सुग्रीव, हनुमान आदि अनेक राजाओं एवं विद्याधरों के साथ मिलकर संयम धारण करते हैं। बाद में राम व हनुमान को तो सिद्ध क्षेत्र की प्राप्ति हो जाती है, परन्तु विभीषण अनुदिश को प्राप्त करते हैं।[4]

सीता द्वारा दीक्षाधारण व अच्युत स्वर्ग में उत्पत्ति—जैन धर्मानुसार सीता तथा पृथ्वी सुन्दरी आदि अनेक देवियां भी श्रुतवती के समीप जाकर दीक्षा धारण करती हैं।[5] दीक्षा धारण करने के उपरान्त वे अच्युत स्वर्ग में उत्पन्न होती हैं।[6]

लक्ष्मण का मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करना—जैन परम्परानुसार जीवों में कई प्रकार की विचित्रताएं मानी गई हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए लक्ष्मण के विषय में कहा गया है कि वह चतुर्थ नरक से निकलकर क्रमशः संयम धारणकर मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करते हैं।[7]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आचार्य गुणभद्र ने जैन परम्परानुसार ही सम्पूर्ण रामकथा का वर्णन कर रामकथा का जैन रूपान्तर प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार राम जैन धर्म के एक महानपुरुष थे, राम के माध्यम से जैन समाज के लोगों को उपदेश देना ही उनका प्रमुख उद्देश्य प्रतीत होता है। जैनीकरण के माध्यम से जैन कवियों ने रामकथा में प्राचीन समय से विद्यमान अनेक अस्वाभाविक व कृत्रिम बातों को भी स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने रामकथा को व्यावहारिक बनाया है। अनेक प्रकार के जैन सिद्धान्तों का पोषण रामकथा के माध्यम से करने का प्रयास किया है। रामकथा का जैनीकरण करके उन्होंने जैन समाज के लोगों को यह उपदेश देने का प्रयत्न किया है कि जो व्यक्ति जैसा कार्य करता है परिणामस्वरूप उसे वैसे ही कर्म भोगने पड़ते हैं। सदाचारी व्यक्ति अन्त में सिद्धि को प्राप्त करता है तथा दुराचारी व्यक्ति अन्त में दुःखों को भोगता हुआ नरक की प्राप्ति करता है। जैन लेखकों ने राम-लक्ष्मण व रावण को अपने धर्म में आठवां बलदेव, नारायण व प्रतिनारायण मानकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। राम अर्थात् बलदेव सदाचारी व शान्त प्रकृति का होने के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है लक्ष्मण चतुर्थ नरक को प्राप्त करता है क्योंकि वह पूर्वजन्म में दुराचारी था तथा उसके पुण्य भी क्षीण हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रतिनारायण रावण का भी दुराचारी होने के कारण नारायण के द्वारा वध किया जाता है तथा वह सप्तम नरक को प्राप्त करता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जैन धर्म के अनुयायी कर्म तथा जीवों की विचित्रता में विश्वास रखते हैं। इनका विश्वास है कि अपने कर्मों के अनुसार ही मनुष्य भिन्न-भिन्न जन्मों में फलों का भोग करता है। राम जैसे आदर्श पात्र को अपने धर्म में स्थान देने के लिए ही इन्होंने त्रिषष्टिशलाकामहापुरुषों में राम, लक्ष्मण व रावण को स्थान दिया है ताकि जैन समाज के लोग भी राम जैसे आदर्श पात्र का अनुसरण कर अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकें। जैन परम्परानुसार 'निर्वाण' ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है। सदाचारी व्यक्ति ही क्रमशः इसे संयम धारण द्वारा प्राप्त कर पाता है। राम-जैसा पुण्यशील मानव ही इसे प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि में गुणभद्र ने राम-कथा का जैन रूपान्तर किया है।

जैन धर्म-दर्शन के सिद्धान्त

आचार्य गुणभद्र-कृत उत्तरपुराण में वर्णित रामकथा का अध्ययन करने से जैन धर्म तथा दर्शन-सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों का ज्ञान

१. 'शरीरत्रितयापायादवापत्पदमुत्तमम् ।' उ०पु०, ६८/७२०
२. उ०पु०, ६८/७२०
३. 'वेदात्प्रादुर्भवद्बोधिः सुग्रीवाणुमदादिभिः ।' उ०पु०, ६८/७१०
४. उ०पु०, ६८/७२१
५. वही, ६८/७१२
६. 'रामचन्द्राग्रदेव्याद्याः काश्चिदीयुरितोऽच्युतम् ।' उ०पु०, ६८/७२१
७. उ०पु०, ६८/७२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे आचार्य गुणभद्र त्रिषष्टिमहापुरुषों के चरित्र-वर्णन द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके अपने समाज के लोगों के लिए आदर्श शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं।

(क) वेद-प्रामाण्य—जैन दर्शन एक नास्तिक दर्शन कहा जाता है। यद्यपि यह भी उसी मार्ग का पथिक है जिससे होकर आस्तिक दर्शनों की विचारधारा बहती है। दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति या परम सुख की प्राप्ति इसका भी परम लक्ष्य है। कठोर तपस्या-साधना आदि के द्वारा कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं का नियन्त्रण कर अन्तःकरण को शुद्ध कर निर्वाण प्राप्त करना इनका भी चरम उद्देश्य है। इसीलिए जैन लोग 'सम्यक्दर्शन', 'सम्यक्ज्ञान' एवं 'सम्यक्चारित्र' इन तीन रत्नों के लिए जीवन भर प्रयत्न करते हैं।[१] ये सभी बातें आस्तिक दर्शनों में भी हैं। अन्तर केवल यह है कि जैन दर्शन ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता[२] और न ही वेदों को प्रमाण मानता है। उत्तरपुराण की रामकथा का अध्ययन करने से इस मत की पुष्टि हो जाती है। आचार्य गुणभद्र ने स्पष्ट रूप से वेद का विरोध किया है। वे कहते हैं, "वेद का निरूपण करने वाले परस्पर-विरुद्धभाषी हैं। यदि विरुद्धभाषी न होते तो उसमें एक जगह हिंसा का विधान और दूसरी जगह हिंसा का निषेध, दोनों प्रकार के वाक्य न मिलते।"[३] वेद का विरोध करते हुए तथा जैन दृष्टिकोण की पुष्टि करते हुए वे कहते हैं कि यदि यह मान भी लिया जाए कि 'वेद स्वयम्भू है, अतः परस्पर-विरोधी होने पर भी इसमें दोष नहीं मानना चाहिए'[४] तो यह बात भी उचित नहीं प्रतीत होती, क्योंकि यदि हम यह मानें कि किसी भी बुद्धिमान मनुष्य के हलन-चलन रूपी व्यापार के बिना ही वेद रचे गए हैं, तो मेघों की गर्जना और मेंढकों की टर्र-टर्र आदि में भी स्वयम्भूत्व आ जाएगा,[५] क्योंकि ये सब भी तो अपने आप ही उत्पन्न होते हैं।

इसीलिए आगम वही है, शास्त्र वही है, जो सर्वज्ञ के द्वारा कहा गया हो तथा समस्त प्राणियों का हित करने वाला हो और सब दोषों से रहित हो।[६] इस प्रकार उत्तरपुराण में जैन दृष्टिकोण के अनुसार वेद-प्रामाण्य का स्पष्ट रूपेण विरोध किया गया है।

(ख) यज्ञानुष्ठान तथा उसमें होने वाली पशु-हिंसा का विरोध—वैदिक कर्मकाण्डानुमोदित 'यज्ञ' का जैन धर्म में कोई स्थान नहीं है। जैनधर्मावलम्बी 'यज्ञानुष्ठान' आदि में विश्वास नहीं रखते। उत्तरपुराण में वर्णित रामकथा का अध्ययन करने से इस मत की पुष्टि हो जाती है। राजा जनक के माध्यम से आचार्य गुणभद्र यज्ञानुष्ठान पर व्यंग्य कसते हैं। राजा जनक का यह कथन, 'पहले राजा सगर, रानी सुलसा तथा घोड़ा आदि अन्य कितने ही जीव यज्ञ में होम किये गये थे। वे सब शरीर-सहित स्वर्ग गये थे, यह बात सुनी जाती है। यदि आज कल भी यज्ञ करने से स्वर्ग प्राप्त होता हो तो हम लोग भी यथायोग्य रीति से यज्ञ करें'[७]—यज्ञानुष्ठान पर स्पष्ट प्रहार है। इससे स्पष्ट होता है कि जैन धर्म में यज्ञ का कोई स्थान नहीं है। जैन मान्यतानुसार यज्ञ करना धर्म नहीं है क्योंकि यह प्रमाण-कोटि को प्राप्त नहीं है। राजा जनक के पूछने पर अतिशयमति नामक मन्त्री कहता है कि बुद्धिमान लोग यज्ञ-कार्य में प्रवृत्त नहीं होते।[८] जैन धर्म में यज्ञ का स्पष्ट विरोध किया गया है। आचार्य गुणभद्र के अनुसार वचन की सिद्धि सप्रमाणता से होती है।[९] जिनमें समस्त प्राणियों की हिंसा का निरूपण किया गया है, ऐसे यज्ञ-प्रवर्तक आगम के उपदेश करने वाले विरुद्धभाषी मनुष्य के उपदेश उसी प्रकार प्रामाणिक नहीं हो सकते, जिस प्रकार पागल मनुष्य के वचन प्रमाण नहीं हो सकते।[१०]

जैन धर्म में यज्ञ के साथ-साथ पशु-हिंसा का भी विरोध किया गया है। जैन धर्मानुयायी 'यज्ञ' का अभिप्राय 'हिंसा' नहीं मानते। जैन परम्परानुसार 'यज्ञ' शब्द दान देना तथा देव और ऋषियों की पूजा करना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। आचार्य गुणभद्र कहते हैं कि यदि 'यज्ञ' का अर्थ हिंसा करना मानें तो जो लोग यज्ञ नहीं करते, उनको नरक में जाना चाहिए—और यदि ऐसा मानें कि हिंसक व्यक्ति भी स्वर्ग जाता है तो फिर जो व्यक्ति हिंसा नहीं करता, उसे नरक में जाना चाहिए।[११]

व्याकरण की दृष्टि से 'यज्ञ' शब्द का अर्थ बतलाकर वे अपने मत की पुष्टि करते हैं। वे कहते हैं कि यदि 'यज्ञ' शब्द का अर्थ 'हिंसा'

१. डॉ० उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन, पृ० ९८
२. एच०सी० भयानी : रामायण-समीक्षा, श्री वेंकटेश्वर यूनिवर्सिटी, तिरुपति, १९६७, पृ० ७६
३. उ०पु०, ६७/१८८
४. उ०पु०, ६७/१९०
५. वही, ६७/१९१
६. वही, ६७/१९१-९२
७. 'स्वर्लोकः क्रियतेऽस्माभिरपि याज्ञो यथोचितम्।' उ०पु०, ६७/१७२
८. 'धर्मो यागोऽयमित्येतत्प्रमाणपदवीं वचः। न प्राप्तोत्पत एवान्न न वर्तन्ते मनीषिणः।' उ०पु०, ६७/१८६
९. उ०पु०, ६७/१८७
१०. वही, ६७/१८८
११. वही, ६७/१९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानें तो फिर धातुपाठ में जहां धातुओं के अर्थ बतलाए हैं, वहां यज् धातु का अर्थ हिंसा क्यों नहीं बतलाया गया ?[1] वहां तो मात्र 'यज् देव-पूजासंगतिकरणदानेषु' यही कहा गया है। इसीलिए यज्ञ का अर्थ 'हिंसा करना' कभी नहीं हो सकता।

अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि यदि यह माना जाए कि यज्ञ का अर्थ हिंसा नहीं है तो आर्य पुरुष प्राणि-हिंसा से युक्त यज्ञ क्यों करते हैं ? यह वाक्य अशिक्षित तथा मूर्ख व्यक्ति का लक्षण है, क्योंकि यह आर्ष और अनार्ष के भेद से दो प्रकार का होता है।[2] जैन परम्परानुसार इस कर्मभूमि-रूपी जगत् के आदि में होने वाले परब्रह्म श्रीवृषभदेव तीर्थंकर के द्वारा कहे हुए वेद में जीवादि छह द्रव्यों के भेद का यथार्थ उपदेश दिया गया है।[3]

सतत विद्यमान रहने वाले तथा वस्तु-सत्ता के लिए नितान्त आवश्यक धर्म को 'गुण' कहते हैं तथा देशकालजन्य परिणामशाली धर्म 'पर्याय' कहलाते हैं। गुण तथा पर्याय विशिष्ट वस्तु को जैन न्याय के अनुसार 'द्रव्य'[4] कहा जाता है। जैन धर्म में क्रोधाग्नि, कामाग्नि और उदराग्नि ये तीन अग्नियां बतलाई गई हैं। इनमें क्षमा, वैराग्य और अनशन की आहुतियां देने वाले जो ऋषि, यति, मुनि और द्विज वन में निवास करते हैं, वे आत्मयज्ञ कर इष्ट अर्थ को देने वाली अष्टमी पृथ्वी-मोक्ष को प्राप्त करते हैं।[5]

इसके अतिरिक्त तीर्थंकर, गणधर तथा अन्य केवलियों के उत्तम शरीर के संस्कार से पूज्य एवं अग्निकुमार इन्द्र के मुकुट से उत्पन्न हुई तीन अग्नियां हैं जिनमें अत्यन्त भक्त तथा दान आदि उत्तमोत्तम क्रियाओं को करने वाले तपस्वी गृहस्थ परमात्म-पद को प्राप्त हुए। अपने पिता तथा प्रपितामह को उद्देश्य कर ऋषि-प्रणीत वेद में कहे मंत्रों का उच्चारण करते हुए, जो अक्षत-गन्ध-फल आदि की आहुति दी जाती है, वह दूसरा 'आर्ष यज्ञ' कहलाता है।[6] जो लोग निरन्तर यह यज्ञ करते हैं, वे इन्द्र के समान माननीय पदों पर अधिष्ठित होकर 'लोकान्तिक' नामक देवब्राह्मण होते हैं और अंत में समस्त पापों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करते हैं।[7]

इस प्रकार जैन परम्परा में यज्ञ का गृहस्थ और मुनि के आश्रय से दो प्रकार का निरूपण किया गया है। इनमें से पहला मोक्ष का साक्षात् कारण है और दूसरा परम्परा से मोक्ष का कारण है।[8] इस प्रकार देवयज्ञ की यह विधि परम्परा से चली आई है, यही दोनों लोकों का हित करने वाली तथा निरन्तर विद्यमान रहने वाली है।

उत्तरपुराण की रामकथा के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि कभी-कभी यज्ञों का दुरुपयोग भी किया जाता था। मुनि सुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में, सगर राजा से द्वेष करने वाले महाकाल नामक असुर ने यज्ञानुष्ठान का दुरुपयोग कर हिंसा यज्ञ का उपदेश दिया था।[9] उसने अपने क्रूर असुरों को राजा सगर के राज्य में तीव्र ज्वर आदि के द्वारा पीड़ा उत्पन्न करने को कहा। महाकाल के मित्र पर्वत ने राजा सगर से कहा कि मैं मंत्रसहित यज्ञों के द्वारा इस घोर अमंगल को शान्त कर सकता हूं। वह उसे हिंसात्मक यज्ञ करने के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है कि 'विधाता ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है', अतः उनकी हिंसा से पाप नहीं होता, किन्तु स्वर्ग के विशाल सुख प्रदान करने वाले पुण्य ही होते हैं।[10] इस प्रकार के वचनों द्वारा विश्वास दिलाकर, उसने राजा सगर से ६० हजार[11] पशु तथा यज्ञ-योग्य अन्य पदार्थों का संग्रह करने के लिए कहा। राजा सगर ने भी सब सामग्री उसे सौंप दी। इधर पर्वत ने भी यज्ञ आरम्भ कर प्राणियों को आमंत्रित कर मंत्रोच्चारणपूर्वक उन्हें यज्ञ-कुण्ड में डालना प्रारम्भ किया। उधर महाकाल ने उन्हें विमानों पर बैठाकर स्वर्ग जाते हुए दिखलाया। इसी बीच उन्होंने सगर के राजा के सब अमंगल भी दूर कर दिए। अंत में एक घोड़ा और रानी सुलसा को भी होम में आहुति रूप में डाल दिया गया, जिससे राजा सगर अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने यतिवर मुनि से अपने द्वारा किए गए कार्य के विषय में पूछा। मुनि ने कहा कि यह कार्य धर्मशास्त्र से बहिष्कृत है।[12] इससे आपको सातवें नरक की प्राप्ति होगी। नारद भी इस कार्य की

---

१. 'हिंसायामिति धात्वर्थपाठे किं न विधीयते।
न हिंसा यज्ञशब्दार्थो यदि प्राणवधात्मकम् ॥' उ०पु०, ६७/१९९
२. उ०पु०, ६७/२००
३. वही, ६७/२०१
४. 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्।' तत्त्वार्थसूत्र, ५/३७
५. उ०पु०, ६७/२०२-३
६. उ०पु०, ६७/२०४-६
७. वही, ६७/२०७
८. वही, ६७/२१०
९. वही, ६७/२१२
१०. वही, ६७/३५७
११. वही, ६७/३५८
१२. वही, ६७/३६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि 'राजा सगर को परिवार सहित नष्ट करने की इच्छा करने वाले किसी मायावी ने यह उपाय रचा है।'[1] बाद में नारद के कहने पर विद्याधरों द्वारा यज्ञ में विघ्न उपस्थित किए गए। पर महाकाल ने पर्वत आदि को जिनेन्द्र के आकार की सुन्दर प्रतिमाओं में परिवर्तित कर दिया और उनकी पूजा करने और तदनन्तर यज्ञ की विधि को प्रारम्भ करने के लिए कहा, क्योंकि जहां जिन बिंब होते हैं, वहां विद्याधरों की शक्तियां भी क्षीण हो जाती हैं।[2] तदनन्तर विद्याधर कुमार दिनकर देव यज्ञ में विघ्न करने की इच्छा से आया, परन्तु जिन प्रतिमाएं देखकर वापिस लौट गया। इस प्रकार यज्ञ की समाप्ति निर्विघ्न हो गई और पर्वत आदि आयु के अन्त में मृत्यु को प्राप्त कर चिरकाल के लिए नरक में दुःख भोगने लगे।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म में पशु-हिंसा का कठोर विरोध किया गया है तथा 'यज्ञानुष्ठान' आदि को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इस धर्म में जिनेन्द्र देव की पूजा को ही महत्त्व दिया जाता है और 'यज्ञ' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अनेकान्तवाद या स्याद्वाद

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक परामर्श के पहले उसे सीमित तथा सापेक्ष बनाने के विचार से 'स्यात्' विशेषण का जोड़ना अत्यन्त आवश्यक है। 'स्यात्' (कथंचित्) शब्द अस् धातु के विधिलिंग के रूप का तिङन्त प्रातिपदिक अव्यय माना जाता है। घड़े के विषय में हमारा परामर्श 'स्यादस्ति=कथंचित् यह विद्यमान है' इसी रूप में होना चाहिए।[3] जैन दर्शन प्रत्येक परामर्श वाक्य के साथ 'स्यात्' पद का योग करने के लिए आग्रह करता है। यही सुप्रसिद्ध स्याद्वाद या अनेकान्तवाद है जो जैन दर्शन की प्रमाणमीमांसा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण देन माना जाता है।[4] जैन दर्शन का यह प्रथम सिद्धान्त है कि प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक हुआ करती है।[5] जैन दर्शन वस्तु के अनन्त धर्मों में से एक धर्म के ज्ञान को 'नय' के नाम से पुकारते हैं।[6] नय सिद्धान्त जैन दर्शन का एक मुख्य विषय माना जाता है। इसका विवेचन जैन ग्रन्थों में बड़े विस्तार से किया गया है।[7]

भगवती सूत्र में स्वयं महावीर ने 'स्यादस्ति', 'स्यान्नास्ति' तथा 'स्याद् अव्यक्तम्'—इन तीन भंगों का स्पष्ट उल्लेख किया है। आगे चलकर इन्हीं मूल भंगों के पारस्परिक मिश्रण से 'सप्तभंगी' की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ।[8]

जैन न्यायानुसार किसी भी पदार्थ के विषय में 'स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्याद् अवक्तव्यम्, स्यादस्ति अवक्तव्यं, स्यान्नास्ति च अवक्तव्यं च, स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च' आदि इतने ही प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। अतः सात प्रकारों को धारण करने के कारण यह 'सप्तभंगीनय' कहलाता है।[9]

उत्तरपुराण में वर्णित रामकथा का अध्ययन करने से 'अनेकान्तवाद' या 'स्याद्वाद' के सिद्धान्त की पुष्टि हो जाती है, उत्तरपुराण में प्रसंगवश वर्णित 'पर्वत' और 'नारद' के आख्यान से इस मत की पुष्टि करने का प्रयत्न किया गया है। एक बार पर्वत के पिता अपने पुत्र और शिष्य नारद, दोनों को आटे का एक बकर [illegible] नाकर देते हैं और कहते हैं कि जहां कोई भी न देख सके ऐसे स्थान में जाकर चन्दन तथा माला आदि मांगलिक पदार्थों से इसकी पूजा करो [illegible] फिर कान काटकर इसे आज ही वापिस ले आओ।[10] पर्वत सोचता है कि इस वन में कोई भी नहीं देख रहा है, इसलिए वह बकरे के दोनों कान काटकर वापिस लौट आता है।[11] लेकिन नारद[12] सोचता है कि अदृश्य स्थान तो यहां कोई भी नहीं है। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तारे आदि सब देख रहे हैं। पक्षी तथा हरिण आदि अनेक जीव भी समीप में उपस्थित हैं। अतः ऐसा विचारकर वह वापिस लौट आता है और सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने गुरु को निवेदित कर देता है।

---

१. वही, ६७/३६६
२. वही, ६७/४५१
३. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, वाराणसी १९७१, पृ० १०३
४. प्रमाणमीमांसा (सिन्धी जैन ग्रन्थमाला : १९३९) प्रस्तावना, पृ० १८
५. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ० १०१
६. 'एकदेशविशिष्टो यो नयस्य विषयो मतः।' न्यायावतार, २९
७. तत्त्वार्थसूत्र, १/३४-३५
८. प्रमाणसमुच्चय : पं० सुखलालकृत प्रस्तावना, पृ० १८-२८
९. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ० १०५-६
१०. उ० पु०, ६७/३०५-६
११. वही, ६७/३०८-९
१२. वही, ६७/३१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारद के वचनों को सुनकर पुत्र की मूर्खता पर विचार करते हुए गुरु कहते हैं कि "जो एकान्तवादी कारण के अनुसार कार्य मानते हैं, वही एकान्तवाद है।" यह मिथ्या है क्योंकि सर्वदा कारण के अनुसार ही कार्य हो, ऐसा नहीं होता। गुणभद्र आचार्य ने ब्राह्मण के मुख से इस बात की पुष्टि की है। वह कहता है कि मैं सदा दया से आर्द्र हूं, परन्तु मुझसे उत्पन्न पुत्र अत्यन्त निर्दयी है।[1] इस प्रकार कारण के अनुरूप कार्य कहां हुआ ? इस प्रकार 'एकान्तवाद' का खण्डन करने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी ओर कहीं कार्य कारण के अनुसार होता है, और कहीं उसके विपरीत भी होता है।[2] यही 'स्याद्वाद' है। यही वास्तव में सत्य है। इसी को 'अनेकान्तवाद' भी कहा जाता है।

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जैन दर्शन मुख्य रूप से आचार-विचार से अनुप्रेरित है। पूर्व में इन लोगों का विशेष ध्यान देह-शुद्धि, अन्तःकरण-शुद्धि आदि पर ही था। जैन धर्म में 'तीर्थंकर' का पद सबसे बड़ा है। इस अवस्था को प्राप्त कर जीव सम्यक् ज्ञान, सम्यक् वाक् तथा सम्यक् चारित्र से युक्त होकर 'साधु' हो जाते हैं। किसी प्रकार का रोग एवं भय इन्हें नहीं सताता। इनमें 'मतिज्ञान', 'श्रुतज्ञान', 'अवधिज्ञान' एवं 'मनःपर्यायज्ञान' स्वभावतः होते हैं। कर्म-बन्धनों से मुक्त होकर ये 'केवलज्ञानी' भी हो जाते हैं।[3] इस प्रकार जैन देवशास्त्र में 'तीर्थंकर' ही सर्वोपरि माने जाते हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषों में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव होते हैं। (इनकी जीवनियां जैन धर्म में रामायण, महाभारत व पुराणों के तुल्य महत्त्व रखती हैं।) राम और लक्ष्मण क्रमशः आठवें बलदेव और आठवें वासुदेव हैं। जैन धर्म में ईश्वर की सत्ता को सर्वोच्च नहीं माना गया है। 'तीर्थंकरों' को ही ईश्वर के समान माना गया है जो अन्त में निर्वाण प्राप्त कर जन्म मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं।[4]

अनेकान्तवाद या स्याद्वाद को भी जैन धर्म में स्थान मिला है। इनके अनुसार, प्रत्येक वस्तु अनन्त-धर्मात्मक होती है। जैन दर्शन वस्तु के अनेक धर्मों में से एक धर्म के ज्ञान को 'नय' के नाम से पुकारता है। 'नय सिद्धान्त' जैन दर्शन का एक मुख्य विषय माना जाता है। जैन दर्शन में प्रत्येक परामर्श-वाक्य के साथ 'स्यात्' पद जोड़ा जाता है। यही 'स्याद्वाद' है।

उत्तर पुराण में वर्णित रामकथा में प्रसंगवश वर्णित पर्वत व नारद के आख्यान से इस मत की पुष्टि की गई है। एकान्तवादी कारण के अनुसार कार्य मानते हैं। इस प्रकार आचार्य गुणभद्र ने रामकथा के माध्यम से जैन धर्म और दर्शन सम्बन्धी सिद्धान्तों को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है।

मुख्य रूप से जैन धर्म और दर्शन में कर्म सिद्धान्त, किए हुए कर्मों के अनुसार ही पुनर्जन्म-प्राप्ति, वेदों की अप्रामाणिकता, यज्ञों की अनुपादेयता, एकान्तवाद के खण्डन, स्याद्वाद या अनेकान्तवाद की स्थापना, तीर्थंकरों की सर्वोच्चता तथा अन्त में रत्नत्रय (सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान तथा सम्यग् चारित्र) की प्राप्ति कर निर्वाण पर ही बल दिया गया है और संक्षेप में ये ही जैन धर्म और दर्शन के प्राण हैं, जो गुणभद्राचार्य द्वारा अपने उत्तर पुराण में रामकथा द्वारा पुष्ट किए गए हैं।

गुजरात में प्राचीन साहित्य की परम्परा बहुत कुछ अखंड रूप में मिलती है। प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाओं का तो उसमें अक्षय भंडार उपलब्ध होता है। उसका सम्बन्ध मुख्यतया जैन-धर्म से है, क्योंकि भारत के इस पश्चिमी भूभाग, लाट-गुर्जर-सौराष्ट्र प्रदेश में जैन-मतावलंबियों का प्रभुत्व प्रायः ईस्वी सन् के प्रारम्भ में ही मिलने लगता है। मध्यकाल से पूर्व गुजरात में जो भी महत्त्वपूर्ण रामकाव्य प्राप्त होते हैं, वे सभी जैन-विचारधारा से सम्बद्ध हैं और उनमें वर्णित रामकथा वाल्मीकिरामायण पर आधारित होते हुए भी अनेक अंशों में उससे भिन्न है। राम, सीता, लक्ष्मण और रावण आदि रामायण के सभी मुख्य पात्र जैनधर्मानुयायी चित्रित किए गए हैं और कथागत भिन्नताओं का कारण भी साहित्यिक न होकर धार्मिक एवं सैद्धांतिक ही अधिक प्रतीत होता है। ऐसी रचनाओं में प्राकृत में रचित विमलसूरि कृत 'पउमचरिउ' (तीसरी-चौथी शती ई०), संस्कृत में रचित रविषेण कृत 'पद्मचरित' (सातवीं शती ई०), अपभ्रंश में रचित स्वयंभूदेवकृत 'पउमचरिउ' (आठवीं शती ई०), संस्कृत में रचित गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' (नवीं शती ई०) तथा हेमचंद्रकृत 'जैन-रामायण' (बारहवीं शती ई०) इत्यादि ग्रंथों के नाम उल्लेखनीय हैं। गुजरात में जैन राम-कथा के दो भिन्न रूप प्रचलित मिलते हैं, जो विमलसूरि और गुणभद्र की रचनाओं पर आधारित हैं।

—श्री जगदीश गुप्त के निबन्ध 'गुजरात में राम-काव्य की परम्परा तथा राम-भक्ति का प्रचार' से साभार
(राष्ट्र-कवि मैथलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० सं० ८४६)

१. उ०पु०, ६७/३१६
२. उ० पु०, ६७/३१५
३. हार्ट ऑफ जैनिज्म : पृ० ३२-३३; पन्द्रह पूर्व भागों की भूमिका, भाग १, पृ० २४
४. उमेश मिश्र : हिस्टरी ऑफ इंडियन फिलासफी, भाग १, पृ० २२८; हार्ट ऑफ जैनिज्म, पृ० ५६-५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org